अध्याय सप्तम्

वित्तीय प्रशासन व्यवस्था

महाकवि कलिदास ने अपने ग्रन्थों में कोष सञ्चय (कर निर्धारण) एवं सदुपयोग सम्बन्धी अनेक उद्धरण दिये हैं, जिनके विवेचन से स्पष्ट होता है कि उन्होंने राजकोष सम्बन्धी मान्यताओं में प्राचीन राजशास्त्र के आचार्यों का ही अनुसरण किया है। कोष (कर) की उपयोगिता यज्ञ के लिए है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन उन्होंने महाराज दिलीप के चरित्र में प्रदर्शित किया है।[1] राजा अपने राज्य की समृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीय योजनाएं कार्यान्वित करता है, जिनकी पूर्ति के लिए उसे धन की आवश्यकता पड़ती है। राजा प्रजा के धन–जन की रक्षा करता है, इसी के प्रतिफल में वह प्रजा से कर प्राप्त करता है अर्थात् प्रजा हितार्थ योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए ही राजा का प्रजा से कर ग्रहण करना सार्थक है।[2]

कालिदास ने राजा को अनेकशः 'षष्ठाँश वृत्ति' कहा है।[3] इससे स्पष्ट है कि इस युग में उपज का छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। दण्ड के रूप में कभी–कभी अन्न भी लिया जाता था, किन्तु यह अपवादस्वरूप था। महाराज दिलीप की गोभक्ति की परीक्षा लेने के उपरान्त नन्दिनी ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम दोनों मेरा दूध दुह कर पी लो। इस पर विनम्रता पूर्वक दिलीप ने कहा– हे माँ! मैं चाहता हूँ कि बछड़े के भी चुकने एवं

---

1 रघु० 2.66 – 'दुदोह गां स यज्ञाय' तथा 'षष्ठांशमुर्का इव रक्षितायाः।'

2 वही, 'प्रजानामेव भूत्यर्थंसताभ्यो बलिमग्रहीत'

3 अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, वही, पृ० 231.

हवन क्रिया से बचने के उपरान्त ऋषि वशिष्ठ की आज्ञा लेकर मैं उसी प्रकार आपका दूध ग्रहण करूँ, जैसे मैं पृथ्वी की रक्षा करके उसकी उपज का छठा भाग ग्रहण करता हूँ।[4] अन्य अनेक उद्धरणों से स्पष्ट है कि कालिदास के चरित्र नायकों की राजस्व व्यवस्था उदार एवं धर्म सम्मत थी। प्रजा को यह विश्वास था कि उससे लिए गए कर का दुरुपयोग नहीं होगा, अतः वह प्रसन्नता से अपना देय चुका देती थी। इस षष्ठांश से आश्रमवासी तपस्वी भी मुक्त न थे। राज–कर्मचारी आश्रमों में कर वसूलने नहीं पहुंचते, तो भी वे अपना षष्ठाँश नदी के तट पर टीलों पर निकालकर रख देते थे। सुरक्षित आश्रमों के तप का छठा भाग राजा को प्राप्त होता है, यह सामान्य विश्वास था।[5]

राजस्व के सिद्धान्त –

महाकवि कालिदास ने करों का औचित्य तभी स्वीकार किया है, जब राजा अपने प्रजा रक्षण के कर्त्तव्य का विधिवत् पालन करता हो। राजा के समर्थ संरक्षण में जब प्रजा सन्तुष्ट एवं परिपुष्ट होती है, तब वह राजा को प्रसन्नतापूर्वक कर चुकाती है।[6] कर राजा का वेतन है, जिसे प्रजा चुकाती है। कर–निर्धारण सिद्धान्त हेतु कालिदास ने गाय, माता और माली का दृष्टांत दिया है[7] –

गाय के दूध के अभिलाषी व्यक्ति को चाहिए कि वह पहले गाय की सेवा सुश्रुषा कर तृप्त करे। जब वह अपना दूध दुहाने के लिए स्वयं आतुर हो, तभी उसका दूध दुहे। जिस प्रकार माता अपने बच्चे को दूध पिलाने में तभी प्रसन्न होती है, जब वह स्वयं

---

4 अग्निहोत्री, प्रभुदयाल – पृ० 231.

5 वही।

6 राधा शर्मा, पृ० 208

7 राधा शर्मा – पृ० 208.

तृप्त हो, इसी प्रकार प्रजा राजा को तभी प्रसन्नतापूर्वक कर देती है, जब वह स्वयं सुखी एवं समृद्ध हो। माली जिस प्रकार पहले वाटिका के वृक्षों की सेवा करता है, तदुपरान्त पके फलों एवं खिले फूलों का संचय करता है, तथैव राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा को सम्पन्न एवं समृद्ध करे, तब राजकोष के निमित्त धन संचय करे।

कर व्यवस्था का निर्धारण करते हुए शासन इस बात पर विशेष विचार करता है कि प्रजा अपनी आय का कितना अंश राजकोष को अर्पित करे। इस विषय पर कालिदास मनु के मत का ही पोषण करते दिखाई पड़ते हैं कि उपज का छठा भाग ही उचित है। कालिदास ने षष्ठाँश को राजा की जीविका (वृत्तिः) कहा है, जिसे प्राप्त करने के उपरान्त राजा का यह धर्म हो जाता है कि वह सदैव प्रजा की भलाई में तत्पर रहे। इस भलाई का विधिवत् सम्पादन करने के लिए ही राजा को समाज के सभी वर्गों से अर्थ संचय करना आवश्यक हो जाता है।[8]

स्रोत –

किसी भी राज्य में राजकोष की वृद्धि का आधार मात्र भूराजस्व ही नहीं होता, अपितु अन्य स्रोत भी होते हैं। कालिदास की कृतियों में भूराजस्व के अधोलिखित स्रोतों के उल्लेख मिलते हैं –

भूराजस्व –

---

8 राधा शर्मा – पृ० 208.

राजा, प्रजा के जन–धन की रक्षा करने के प्रतिफल स्वरूप उससे भूमि की उपज का छठा भाग लेता था।[9] विघ्नों से तप तथा लुटेरों से धन की रक्षा करने वाले राजा को आश्रमवासी एवं सभी वर्णों के लोग अपनी योग्यतानुसार[10] अपनी प्राप्ति का छठा भाग अर्पित करते थे। अभिज्ञान– शाकुन्तलम् में राजा के भागधेय प्राप्त करने का उल्लेख है[11], जो भाग और धेय से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है– कर। कर की मात्रा को कालिदास ने षष्ठाँश ही विहित माना है तथा इसे वह राजा की जीवन–निर्वाह[12] आय (वृत्ति) का नाम देते हैं। आय का सर्वप्रथम साधन भूराजस्व था, जो कड़ाई से वसूल किया जाता था। इसका संग्रह इतना पूर्ण था कि तपोभूमि के निवासी तपस्वियों के आध्यात्मिक अर्जन भी इसके अपवाद नहीं थे। कालिदास तो यहाँ तक कहते हैं कि, जो धन वर्गों अथवा सामाजिक व्यवस्थाओं से संग्रहीत होता था, नाशवान था, जबकि आरण्यक राज्य राजा को अपने तप का षष्ठाँश देते थे, जो नाशरहित था।[13] वास्तविकता तो यह है कि महाकवि की कृतियों में ऐसे भी उद्धरण मिलते हैं, जहाँ तपस्वी भी अपनी भूमि की उपज के भाग को चुकाता था। यह भाग नदी के किनारे एकत्रित किया जाता था। जहाँ से राजकीय अधिकारी ले जाते थे।[14] इस भाग को प्राप्त कर राजा अपनी प्रजा के बचाव तथा सुरक्षा (योग क्षेम वहाः) का भार अपने सिर पर लेता था और यथोचित दण्ड विधान करने तथा कर वसूल करने के सिद्धान्तों की अवहेलना होने की स्थिति में अपनी प्रजा के पापों का उत्तरदायी होता

---

9 रघु, 2.8, 17.65; शाकु०, पृ० 76; 2, 13, 5.4

10 वही, 17.65 तपो रक्षन्सविघ्नेभ्यस्तस्केरभ्यश्च सम्पदः,
यथा स्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंश भाक्।

11 उपाध्याय, वासुदेव – कालिदास का भारत, पृ० 209.

12 वही, पृ० 210.

13 उपाध्याय, भगवतशरण – कालिदास का भारत, पृ० 209

14 अभिज्ञान०, पृ० 76

था। अतः तपस्वी भी अपने संग्रह के अन्न का छठा भाग राजा को यह विचार कर देते थे कि यह कर स्वरूप दिया जा रहा है, जो हमारी रक्षा करता है।

स्पष्ट है कि नीति एवं धर्मशास्त्रों के अनुसार राज्य कर निर्धारित करते थे, जिससे राजा एवं प्रजा एवं संघर्ष नहीं रहता था।

सिञ्चन –

कालिदास ने सिञ्चन कार्य हेतु सेतु शब्द का प्रयोग किया है। राजस्व की वृद्धि हेतु अन्न की प्रचुरता हेतु सिञ्चन सौविध्य होना नितान्त उपयुक्त था। भूराजस्व फसल की वृद्धि के साथ बढ़ जाता था।[15]

मादक द्रव्य विभाग –

यद्यपि महाकवि कालिदास ने मदिरालयों से शुल्क लिए जाने का उल्लेख तो नहीं किया है, तथापि इनकी बड़ी संख्या के उल्लेखों[16] से अनुमित होता है कि इनसे भी कर लिया जाता रहा होगा। जब यति एवं मुनि इससे मुक्त नहीं थे तो भला मदिरालयों से कैसे राजस्व नहीं लिया जाता रहा होगा।

अन्य स्रोत –

पुल निर्माण, नाव घाट का चलाना, कृषि, खलिहान, पशुपालन, हाथी पकड़ना आदि राजस्व प्राप्ति के स्रोत थे।[17] पर्याप्त विस्तार में खोदी गई खानें, खनिज द्रव्यों से भरपूर ज्ञात होती है, जिनसे राजस्व प्राप्त होता था।[18] सेतु निर्माण नदी पार जाने के साधन होने के कारण राजस्व के स्रोत होते थे।[19]

कर –

---

15 रघु०, 16.2.

16 शाकु०, पृ० 188.

17 रघु०, 16.2 – 'सेतु वार्तागजबन्ध मुख्यः'

18 वही, 17.66; माल० 5.18

19 वही,

जल एवं थल मार्गों से व्यापार–वाणिज्य उन्नतिशील था। नैगम[20] एवं सार्थवाह[21] जैसे बड़े–बड़े व्यापारी अपने स्वामी को प्रचुर धन देते थे जिसकी रक्षा में वणिक पथ सुरक्षित था एवं देश के विभिन्न भागों में वाणिज्यिक वस्तुओं का क्रय–विक्रय निरापद रूपेण सम्भव था। वणिक गजों द्वारा राजकोष में धन प्रवाहित (धारासार) होता था।[22]

राजकोष की वृद्धि का एक स्रोत विजय द्वारा प्राप्त हुई सामग्रियाँ भी होती थीं।[23] पराजित राजाओं से अश्व, गज, सुवर्ण के ढेर एवं अन्य बहुमूल्य उपहार प्राप्त होते थे।[24] भेंट जो सैद्धान्तिक उपायन नाम से जानी जाती थी, विदेशी राज्यों तथा पराभूत आक्रामकों से प्राप्त होती थी, जो मुद्रा में भेंट की बहुत बड़ी रकम चुकाते थे।[25] कामरूप से हाथी एवं रत्न, कम्बोज से बहुत से घोड़े और धन प्राप्त हुए थे, जबकि विदर्भराज से असंख्य अनमोल रत्न, हाथी, घोड़े एवं श्रेष्ठ कलाकार सेवक भेंट स्वरूप प्राप्त हुए थे।[26]

शत्रु अथवा मित्र राजाओं से प्राप्त धन के अतिरिक्त राज्य के कतिपय अन्य ऐसे भी स्रोत भी थे, जिन्हें उपज के छठे भाग के अतिरिक्त कहा जा सकता है। इसमें से सर्वप्रमुख था किसी पुरुष उत्तराधिकारी के अभाव में मृत व्यक्ति की सम्पत्ति का राजकोष में सम्मिलित होना।[27]

---

20 विक्रम० 4.13 – 'धारासारोपनयनपरा नैगमाः सानुमन्तः'।

21 शाकु०, पृ० 219; रघु० 17.64.

22 विक्रम० 4.13

23 रघु० 4.

24 रघु० 4.83

25 वही, 4.79

26 रघु०, 4.70, 4.83

27 शाकु०, पृ० 219.

मुद्रा या वस्तुओं में भी कर चुकाया जा सकता था। भू–राजस्व के रूप में भूमि की उपज के छठे भाग का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि भू–राजस्व वस्तु के रूप में लिया जाता था। वह मुद्रा में भी स्वीकार्य था। मंत्री के लेखा में 'कोष के एक संग्रह की गणना' से प्रमाणित है।[28] कालिदास द्वारा वर्णित सुवर्ण मुद्राओं से भी यही संकेतित होता है।[29]

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों मे ंराजस्व सम्बन्धी जो वर्णन किए हैं, उनमें भू–कर का छठा भाग ही मुख्य स्रोत था। इसके अतिरिक्त विजितराज्यों द्वारा प्राप्त रत्न, सुवर्ण, गज, अश्व, रथादि भी प्राप्त होते थे। वस्तुतः कोष वृद्धि के कर्त्तव्य का निर्वाह करने में कालिदास ने अपने किसी भी चरित्र नायक को अत्यधिक क्रियाशील नहीं चित्रित किया। इसका कारण यह है कि कालिदास द्वारा प्रतिपादित चरित्रों की शासन व्यवस्था इतनी सुचारु थी कि उसमें प्रजा की सम्पन्नता सहज सम्भाव्य होने के कारण राजकोष की विपन्नता का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः कालिदास की कृतियों में न तो कठोर कर व्यवस्था का उदाहरण मिलता है और न राजकोष की रिक्तता का।[30]

व्यापार–वाणिज्य –

विवेच्य काल में व्यापार तथा वाणिज्य काफी प्रगति पर थे।[31] समाज में व्यापारियों की सम्मानजनक स्थिति थी, क्योंकि आर्थिक क्रियाकलापों की रीढ़ व्यापारी ही

---

28 शाकुन्तलम्, अर्थ जातस्य गणना।

29 रघु० 1.18.

30 राधा शर्मा, वही, पृ० 212.

31 रघु० – 5/4.

हुआ करता था। इसीलिए राजा की दृष्टि में भी व्यापारियों का अतिशय सम्मान था।[32] व्यापार इतना अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि में अगणित होता था कि महाकवि ने उनके आवागमन के लिए 'वणिक पथ'[33] का वर्णन किया है। महाकवि ने स्थलमार्ग एवं समुद्रमार्ग दोनों का वर्णन करते हुए लिखा है कि, महाराज रघु स्थलपथ[34] (स्थलवर्त्यना) को अधिक पसन्द करते थे। जिसके सन्दर्भ में रघुवंश के टीकाकार मल्लिनाथ का विचार है कि स्थल मार्ग की प्रशंसा धार्मिकता के कारण है, क्योंकि धार्मिक दृष्टि से समुद्री यात्रा अपास्य थी,[35] किन्तु अधिकांश विद्वान मल्लिनाथ के इस निष्कर्ष से असहमत हैं। उनका कहना है कि कालिदास के काल में सामुद्रिक क्रिया–कलापों की बाढ़ सी आ गयी थी और कहीं भी समुद्री यात्रा इस काल में निन्दनीय नहीं थी।[36] फाह्यान लिखता है कि वह समुद्रपथ से एक जलपोत में चीन प्रत्यावर्तित हुआ जिसमें अन्य सहयात्रियों में वैष्णवधर्मानुयायी ब्राह्मण भी थे और इन ब्राह्मणों ने यात्रा के दौरान आये तूफान का कारण सहयात्रियों में उपस्थित एक विदेशी बौद्ध यात्री को बताया था।[37] इसके अतिरिक्त इसके लगभग एक शती के बाद ही बाली, जावा, सुमात्रा के पड़ोसी द्वीपों को भारतीयों के सामरिक कार्यों के द्वारा उपनिवेश बनाया गया। गुप्तों के बहुत काल पूर्व में भी अरब, मिश्र एवं रोम के साथ प्रचुर रूप में सामुद्रिक वाणिज्य चलता था।[38] महाराज रघु ऐसे दिग्विजयी चक्रवर्ती थे, जिसमें स्थल मार्ग से सम्पूर्ण देश को आक्रान्त कर लिया। उसकी विजय यात्रा

---

[32] रघु० (मल्लिनाथ टीका), 4/60

[33] वही, 4/60

[34] उपाध्याय, भागवत शरण, पूर्वोद्धृत, पृ० 356.

[35] उपाध्याय, भगवतशरण – पूर्वोद्धृत, पृ० 356

[36] वही।

[37] कुमार० – 7/3.

[38] रघु०– 14/30

के मध्य में स्थल–पथ से यात्रा करने के प्रसंग के आने का कोई मतलब नहीं है जब तक यह न मान लिया जाय कि तट पर त्रिकूट से एक सामुद्रिक मार्ग भी था। सम्भवतः यहां पारस तथा दूसरे स्थानों में आने के लिए लोग जलपोतों पर सवार होकर समुद्र यात्रा करते थे।[39] यहाँ यह उल्लिखित करना अप्रासंगिक न होगा कि कल्याण एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। जिसका व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्व था देश के एक छोर से दूसरे छोर तक गमनागमन करने वाला स्थल मार्ग, महापथ[40], राजपथ[41], नरेन्द्रमार्ग[42] आदि विविध अभिधानों से सम्बोधित होता था।[43] महाकवि का युग वस्तुतः सघन आन्तरिक वाणिज्यिक क्रिया–कलापों का काल था, जिसमें समाजार्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन की प्रायः सभी गतिविधियों में तीव्रता थी तथा शासन–प्रशासन द्वारा व्यापार–वाणिज्य को संरक्षण प्रदान किया गया था तथापि किसी–किसी प्रदेश में राजमार्ग लुटेरों के भय से सर्वथा मुक्त नहीं थे।[44] व्यापारियों के लुटने सम्बन्धी सूचनाओं को राजा तक पहुँचाने विषयक सूचनाओं के उल्लेख महाकवि की कृतियों में उपलब्ध हैं।[45] आन्तरिक–व्यापारिक मार्ग राजा 'रघु' की विजय–यात्रा में दक्षिणाभिमुख अभियान का मार्ग लक्षित हो सकता है।

बरार (भोजों के देश) पर महाराज 'अज' के आक्रमण का मार्ग दक्षिण मध्य भारत को जाने वाला सम्भवतः अन्य दूसरा कोई मार्ग था। बी.एस. उपाध्याय का विचार है कि मेघदूत में मेघरुपी दूत ने जिस मार्ग पर गमन किया था वह सम्भवतः तीसरा मार्ग था,

---

[39] वही 4/67.

[40] व्यापारिक मार्गों एवं अन्य राजमार्गों पर विस्तृत जानकारी हेतु इस शोध–प्रबन्ध का द्रष्टव्य है।

[41] माल० – 1/17.

[42] वही, 5/10.

[43] वही, पृ० 98.

[44] रघु० – 4.

[45] वही, 5/41.

किन्तु इसे कुछ परिवर्तन के साथ ही अंगीकार किया जा सकता है।[46] उनके अनुसार दृष्टान्तया उज्जयिनी अवश्यमेव उत्तर की ओर गमन करने वाला मार्ग था, यद्यपि उस मार्ग से यह दूर पड़ता है, जिस मार्ग से मेघदूत चलता था। इसीलिए सुखद निवास तक पहुँचाने के लिए कवि को निर्धारित मार्ग को मोड़ना पड़ता है।[47] सीधा एवं सरल मार्ग का अवलम्बन करने में भूगोल यह स्पष्ट करता है कि मेघ को सीधे उत्तर का मार्ग ग्रहण करना चाहिए था, क्योंकि घने जंगल, उच्च पर्वत या अन्य कोई अवांच्छित बाधा उसके ऊँचे मार्ग में किसी प्रकार का अवरोध नहीं उत्पन्न कर सकते थे किन्तु यह बात किसी व्यापारी या व्यवसायी पर प्रवर्तित नहीं होती है, क्योंकि वह ऐसी किसी बाधा का अतिक्रमण नहीं कर सकता है जैसा मेघ कर सकता था। अतः इस मार्ग में उज्जयिनी भी पड़ती थी।[48] पेरिप्लस वस्तुतः इसे इसी मार्ग में स्थित बताता है। वह लिखता है 'वरिगज से पूर्व दिशा में एक नगर है जिसका नाम 'ओ जे ने' है जो पहले राजनगर था, जहां राजा रहता था। इस स्थान से वरिगंज को हर प्रकार की वस्तुएं स्थानीय उपभोग या भारत के अन्य भागों को निर्यात करने के लिए लायी जाती है, चकमक पत्थर, चीन के बर्तन, महीन मलमल तथा फूलों के रंग में रंगी तथा साधारण प्रकार की प्रभूत मात्रा में हुई। यह समुद्रतट पर ले जाने के लिए प्रोक्लेज से होकर देश के ऊपरी भू–भाग से स्फाइननार्ड, कौस्टस उडेलियम का आयात करता है।' अतएव उज्जयिनी उत्तर के उन सभी देशों से सम्बन्धित थी जिनका वाणिज्य भारत के पश्चिमी तट के भागों से होकर पश्चिमी विदेशों के साथ चलता था। सम्भव है, दक्षिण के सोपर तथा कल्याण के पोताश्रयों से भी इसका सम्बन्ध हो। पैदल

---

[46] उपाध्याय, भगवतशरण – पूर्वोद्धृत, पृ० 357.

[47] उपाध्याय, भगवतशरण – पूर्वोद्धृत, पृ० 357

[48] मेघदूत (पूर्व मेघ), पृ० 28. (जे०के० वर्मा), दिल्ली 2003

चलने के मार्ग पर यात्री बहुधा चलते रहते थे और वे यात्रा के लिए सामान्यतः सुरक्षित थे।[49]

जल मार्गों का भी प्रयोग व्यापार–वाणिज्य में बहुतायत में होता था। पीछे यह उल्लेख किया गया है कि महाराज रघु ने जलमार्ग से यात्रा करना पसन्द नहीं किया।[50] पारस जाने का जल–पथ विख्यात था जिससे पोत बराबर गमनागमन करते थे। वंगदेश निवासियों के पास युद्धपोत होने की चर्चा महाकवि की कृतियों से प्राप्य है।[51] सम्भवतः सम्भवतः यह आन्तरिक सीमा में जलमार्गों में चलता रहा होगा। छोटी–छोटी जल नौकाओं[52] एवं किनारों पर चलने वाली अनेक प्रकार की अपेक्षाकृत विशाल नौकाओं[53] का जिनमें एक का आकार उसकी विशालता के सापेक्ष्य 'चँदोवा' (विमान)[54] के समान था का उल्लेख मिलता है। चँदोवा लगता है विशेष गति से चलने वाली अत्यन्त सुखप्रद नौका रही होगी जिसमें राजघराने के लोग यात्रा करते रहे होंगे।[55] कालिदास ने इसे 'नौ विमान'[56] नाम दिया है। नदियों तथा समुद्रों में प्रबल झंझावत के फलस्वरूप अथवा कठोर एवं विशाल चट्टानों से टकरा जाने से नौकाओं एवं जहाजों के मग्न होने के वर्णन भी साहित्य में मिलते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में घनमित्र नामक इस व्यापारी का संदर्भ वर्णित है जिसकी

---

49 उपाध्याय, भगवत्शरण – कालिदास का भारत, पृ० 357. दिल्ली 2005.

50 वही।

51 पीछे पृष्ठ पर द्रष्टव्य है।

52 रघु० 4/36 – नौसाधनोद्यतान्।

53 वही, 1/2.

54 वही, 14/30.

55 वही, 16/68

56 वाजपेयी, के०डी० – प्राचीन भारत का विदेशों से सम्बन्ध, पृ० 104, इन्दौर, 1951,

नौका नष्ट हो गयी थी।[57] 'रघुवंश' में समुद्र यात्रा का मनोरम चित्र खींचा गया है।[58] महाकवि ने ताम्रपर्णी नदी तथा भारतीय सागर के संगम में मोतियों के निकाले जाने की चर्चा की है।[59] इन मुक्ताओं एवं रत्नों को अभिजात्य संवर्ग के नर–नारी बहुत पसन्द करते थे। इसका निर्यात विदेशों को भी होता था। 'वराहपुराण' यह सूचना देता है कि भारत के दक्षिणी तट के निवासियों का मुख्य व्यवसाय मोती निकालना था।[60] महाकवि ने भी बंगाल की खाड़ी (महोदधि) के तट पर कलिंग देश में प्रवाहित होने वाली हवा का मनोहारी चित्र खींचा है। जो दीपान्तरों में होने वाली लवंगादि पुराणों के स्पर्श के कारण सुगंधित रहती थी।[61] इस वर्णन के आधार पर कलिंग प्रदेश तथा दक्षिणी पूर्वी द्वीपों के बीच याता–यात का अनुमान लगाया जा सकता है।

आयात–निर्यात –

वाणिज्य के अन्तर्गत आयात एवं निर्यात दोनों का वर्णन अभीष्ट है। इस काल में भी भारत तथा पश्चिमी जगत् के मध्य प्रायः उन वस्तुओं का आवागमन गतिमान रहा जो पीछे के कालों में आती–जाती रही है। पूर्व युग में पशुओं का निर्यात पर्याप्त मात्रा में होता था। आश्चर्य की बात है कि महाकवि के काल में भी यह परम्परा गतिमान रही। अरब, ईरान तथा यूनान के घोड़े बड़ी संख्या में भारत आते थे। कालिदास ने घोड़े की 'बनायु' पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश का उत्कृष्ट कोटि का माना था। नन्दलाल डे इसकी

---

[57] रघु० – 16/68 नौविमान।

[58] अभि० – अंक–6, समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसनेविपन्न।

[59] रघु० 13/1–17.

[60] रघु० – 4/50.

[61] वाजपेयी, के०डी० – प्राचीन भारत का विदेशों से सम्बन्ध, पृ० 105, इन्दौर, 1951,

पहचान अरब से करते हैं।[62] कौटिल्य ने भी 'बनायु' घोड़ों की प्रशंसा की है। कम्बोज से घोड़े आयात होते थे।[63] पश्चिम वाले (पाश्चात्यः)[64], पारसीक[65] तथा यूनानी[66] को महाकवि ने घुड़सवार के रूप में (अश्वसाधनाः) उल्लिखित किया है। जिसके आधार पर भगवतशरण उपाध्याय का निष्कर्ष है कि पश्चिम से सुन्दर अश्व आयात किए जाते थे।[67]

महाकवि ने 'लौंग' का वर्णन करते हुए कहा है कि यह आज कल की ही तरह अन्य द्वीपों से आता था।[68] भृगुकच्छ कल्याण तथा अन्य दूसरे पश्चिमी तथा पूर्वी तटों के पोताश्रयों से होकर विदेशों से भारत में आने वाले आयातों की एक विस्तृत सूची का उल्लेख[69] प्राप्य है। यह नम्बुनस राज्य में आयातित शराब, इटालियन ताँबा, लायोडिसिय तथा बरेवियन भी, टीन, सीसा, मूंगा, पुतपराग्, महीन वस्त्र और सब प्रकार के पोशाक, रंगीन चटकीले कमरबन्द, राल (स्टोरेक्स) मिष्टतृण, चकमक पत्थर, लाल, नीलम, सुवर्ण तथा चांदी की मुद्राएं, लेप, घोड़ा, राजा के लिए उपहार की बहुमूल्य सामाग्रियाँ, रजत के कीमती बर्तन, गाने वाले लड़के, राज महलों के लिए कामिनियाँ, अच्छे मद्य, बारीक पारदर्शी कपड़ों के वस्त्र, सुगन्धित लेप–द्रव्य आदि।[70] चेट तथा पाण्ड्य राज्यों से आयातित सामग्रियों में प्रभूत मात्रा में मुद्राएं, पुष्पुराण, महीन वस्त्र, चित्रित मखमल, नीलम, शीशा (अपरिष्कृत), ताँबा, टीन, सीसा, मद्य, लाल, पीतराग एवं गेहूँ। भारत के पूर्वी तट पर जहां पश्चिमी तट,

---

62 रघु० – 6/57.
63 वही, 5/73.
64 डे, नन्दलाल – ज्योग्राफिकल डिक्शनरी, पृ० 22.
65 रघु० – 5/73.
66 अर्थशास्त्र, खण्ड–2, अध्याय–30.
67 रघु० – 4/69–70.
68 अभि० 4/62.
69 अभि० 60–65.
70 माल० – पृ० 12.

गंगा और चीली से आये पोतों के द्वारा दमिरिक और उसके पड़ोसी देशों में बने प्रत्येक पदार्थों और जिनमें अधिकांश मिश्र से आए हुए होते थे, ग्रहण किया जाता था।[71] चीन से आयात होने वाले रेशम की प्रायः चर्चा होती है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त, हाथी, गदा, सुपाड़ी खाले, चमड़े की ढोल, मोम, चन्दन आदि की लकड़ी, कपूर एवं अभ्रक का भी भारत में आयात होता था। कई द्वीपों से भारत तथा अन्य देशों को दास भी भेजे जाते थे। बोर्नियों के समुद्री डाकू यह दास–व्यवसाय प्रायः करते थे।

निर्यात के सम्बन्ध में स्पष्ट एवं क्रमबद्ध उल्लेख अप्राप्य है, किन्तु यह एक सामान्य बात थी कि आवश्यकता से अधिक उत्पादित प्रत्येक वस्तु निर्यात होती रही होगी। 'मोती' के उत्पादन के अतिरेक की दशा विख्यात है। अतएव मोती का भारत से निर्यात होता था। मसाले[72] भी भारत में खूब पैदा होते हैं अतएव व्यापारिक सम्बन्ध वाले देशों में मसालों का निर्यात अत्यन्त सहज है। भारतीय पारदर्शी एवं महीन कपड़ों की प्रशंसा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर थी जिसकी प्रशंसा में फाह्यान कहता है कि ये कपड़े सांस लगने से उड़ने लगते थे। किसी से भारत से रोम जाने वाले वस्त्रों की चर्चा करता है। अतएव स्पष्ट है कि वस्त्रों का निर्यात भी होता था।

भारत में निःसन्देह महाकवि–काल में देशीय–विदेशीय वाणिज्य एवं व्यापार प्रगति पर था। कालिदास जब 'कामरुप' में प्रभूत मात्रा में उत्पादित उच्च कोटि के हीरे की चर्चा करते हैं तो मन रोमांचित हो उठता है।[73] उन्होंने अनेक ऐसी खनिजों का उल्लेख किया है। ताम्रपर्णी तथा भारतीय समुद्रों से उत्पन्न होने वाले बहुमूल्य मोतियों की भी चर्चा

---

[71] उपाध्याय, भगवत्शरण – पूर्वोद्धृत, पृ० 359.

[72] .रघु० 6/57.

[73] उपाध्याय, भगवत्शरण – पूर्वोद्धृत, पृ० 359

किया है।[74] ये उत्पादित हीरे, मोती, शंख, सीप, मूंगा अवश्य ही भारत के दूर–दूर मण्डियों में विक्री हेतु पहुँचाएं जाते थे। कलिंग[75], अंग[76], कामरूप[77] के जंगल हाथियों के लिए प्रसिद्ध थे। निश्चय ही यहाँ से हाथियाँ पकड़कर विक्री हेतु ले जाया जाती थी। कौटिल्य भी कलिंग के सन्दर्भ में हाथियों की उपलब्धता की प्रशंसा करते हैं। बाजार विक्रेताओं से अप्लावित रहता था। तथा विक्री हेतु माल का अभाव नहीं रहता था।[78] निष्क्रिय शब्द का व्यवहार क्रम के सन्दर्भ में हुआ है।[79] राजपथ के दोनों किनारों पर सड़के ऊँची कर दी जाती थी, जिन पर वणिक अपने विक्रीत की जाने वाली सामग्रियों को सजाकर बैठते थे।[80] दूसरी दुकानों के अतिरिक्त शराब दुकानों का भी उल्लेख आता है।[81] सामानों के क्रेता–विक्रेता सामानों को ले जाने–ले आने में जलमार्ग से चलने हेतु नौकाओं का प्रायः प्रयोग करते थे।[82] बाजार में आना–जाना सामान्य जीवन में इतना में इतना अधिक अपरिहार्य था कि बाजार में आने–जाने वाले मार्ग को 'आपण मार्ग' कहा जाता था।[83] यद्यपि समुद्री यात्रा की भयानकता अत्यन्त असामान्य होती थी। कभी–कभी समुद्री तूफानों एवं डाकुओ दोनों का सामना करना पड़ता था। ऐसे ही एक सुप्रसिद्ध श्रेणी की पोत दुर्घटना का उल्लेख महाकवि ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में किया है जो हस्तिनापुर का निवासी था। राजकीय स्तर पर इन दोनों खतरों से निपटने की व्यवस्था की जाती थी।

---

[74] वही।

[75] वाजपेयी, के०डी० – प्राचीन भारत का विदेशों से सम्बन्ध, पृ० 122. इन्दौर, 1951.

[76] रघु० 4/46, 47

[77] वही, 16/43

[78] वही, 4/84.

[79] वही, 3/18, 17/66.

[80] रघु०, 4/50.

[81] वही, 4/40

[82] वही, 6/27.

[83] रघु० – 4/83.

कालिदास युगीन व्यापारिक मार्ग –

विवर्त काल में मार्गों के विकास पर विचार करके हम देखते हैं कि महाकवि कालिदास की सूक्ष्मतम् दृष्टि से प्राचीन काल के मार्ग कदापि ओझल नहीं हो पाते हैं और इनकी कृतियों में तत्कालीन भारत के विविध मार्गों का चित्रण मनोरम शैली में मिलता है। कालिदास ने अपनी कृतियों में प्रायः उन सभी मार्गों का विस्तृत उल्लेख किया है, जो तत्कालीन भारत में किसी न किसी दृष्टि में न केवल उपयोगी व महत्वपूर्ण थे अपितु यहां यह कहा जा सकता है कि कालिदास के पूर्व इन बहुउद्देशीय एवं बहु उपयोगी मार्गों का इतना सुस्पष्ट एवं सुव्यवस्थित वर्णन अन्यत्र विरल है। कालिदास की कृतियों में प्राप्य मार्गों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित तीन कोटियों में विभक्त किया जा सकता है–

1. वाणिज्य सम्बन्धी मार्ग–

   (क) स्थली व्यापारिक मार्ग

   (ख) जलीय व्यापारिक मार्ग

2. सामरिक या यौद्धिक सम्बन्धी मार्ग

3. व्योम मार्ग (स्थल के आधार पर)

1. वाणिज्य सम्बन्धी व्यापारिक मार्ग

   (क) स्थलीय व्यापारिक मार्ग–

1. विदर्भ से विदिशा तक का मार्ग

2. महापथ

3. राजपथ

4. कुछ महत्वपूर्ण मार्ग (विशेष मार्ग)

1. विदर्भ से विदिशा का मार्ग –

कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक के पंचम अंक में विदर्भ से विदिशा जाने वाले सार्थवाह[84] को विन्ध्याचल के वनों में रहने वाले डाकुओं द्वारा लूटने का उल्लेख किया है। विदर्भ से विदिशा के लिये कोई एक मार्ग निर्धारित नहीं था। विभिन्न मार्ग विन्ध्य वनों से होकर गुजरते थे। सतपुड़ा की पहाड़ियां और विन्ध्य पर्वत उत्तर भारत को दक्षिण से पृथक करती थी।[85] इस भूभाग में पश्चिम से पूरब चलते हुये कई मार्ग इतिहास में बहुख्यात हैं।[86] विन्ध्य पर्वत अपने उन पथों के लिये प्रसिद्ध है जो उत्तर भारत को पश्चिमी किनारे के बन्दरगाहों और दक्षिण के प्रसिद्ध नगरों से जोड़ते हैं।[87] पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के अल्पता एवं विपर्यय के कारण दक्षिण भारतीय मार्गों की उत्पत्ति एवं विकास का प्रश्न उलझा हुआ है। वैदिक आर्य दक्षिण भारत से परिचित थे।[88] लेकिन छठी शताब्दी ईसवी पूर्व के अन्तिम चरण में उत्तर और दक्षिण भारत के बीच मार्गों के विकास की गति अत्यन्त धीमी थी। विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में पड़ने वाले जनपदों जैसे–विदर्भ एवं अस्मक का उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों, धर्मसूत्रों और पाणिनी की अष्टाध्यायी[89] में मिलता है, लेकिन साहित्यिक साक्ष्यों में उल्लिखित जनपदों के नाम से उत्तर और दक्षिण भारत के बीच विकसित संचार का होना प्रमाणित नहीं होता है। वैदिक आर्य विन्ध्य को पार करने

---

84 ऋग्वेद – 10–61–8 (ऋग्वेद में दक्षिणापथ को दक्षिणापाद कहा गया है)

85 ऐतरेय ब्राह्मण 7, 18; बौधायन धर्मसूत्र – 1, 1.2.3; अष्टाध्यायी 4.1.170.4

86 भण्डारकर, आर०जी० – अर्ली हिस्ट्री ऑफ दक्कन, पृ० 5, बम्बई, 1895.

87 अग्रवाल, वी०एस० – प्रेसीडेंसियल एड्रेस ऑल इण्डिया, ओरियण्टल कांफ्रेंस, 22वां संस्करण, गोहाटी, 1965

88 महाभारत, वनपर्व – 61–21 – एते गच्छन्ति बहवः पन्धानी दक्षिणापथम्।

89 मोतीचन्द्र सार्थवाह, पृ० 24.

में डरते थे और वे विन्ध्य के सर्वथा सुरक्षित चारों पूर्वी चक्करदार रास्तों से दक्षिण की ओर जाते थे।[90]

सम्भवतः सुरक्षात्मक दृष्टिकोण को प्राथमिकता देने के ही कारण आर्य अवन्ति के क्षेत्र से होकर दक्षिण के माहिष्मती नगर को गये, जो नर्मदा के तट पर अवस्थित था। यहां से विन्ध्य पर्वत को पार करके आर्यजन विदर्भ से प्रयाण किये।[91]

बी.एस. अग्रवाल ने 'महाभारत' के 'वनपर्व' में वर्णित तीन मार्गों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। इन तीन मार्गों में प्रथम दक्षिण कोशल की ओर, द्वितीय विदर्भ की ओर और इन दोनों के बीच से होकर जाने वाला मार्ग दक्षिणापथ था।[92] महाभारत से ज्ञात होता है कि ऋक्षवान् (ऋक्षवान् सम्भवतः विन्ध्य पर्वत रहा होगा) पर्वत को पार करके एक मार्ग अवन्ति की ओर जाता था।[93] यहां से यह मार्ग माहिष्मती को जाता था, जहां कई व्यापारिक मार्ग निकलते थे। इसके अतिरिक्त दो अन्य मार्ग थे– एक विदर्भ जनपद को और दूसरा दक्षिण कौशल को जाता था।

उस समय एक और महापथ था जो प्रतिष्ठान से होकर श्रावस्ती जाता था। इस मार्ग पर भृगुकच्छ, उज्जयिनी, विदिशा, कौशाम्बी तथा कपिलवस्तु नामक नगर स्थित थे।[94] प्रतिष्ठान–श्रावस्ती पथ का जो भाग विन्ध्य वनों के बीच से जाता था, उसे सम्भवतः कांतार पथ की संज्ञा दी गयी थी।[95]

---

90 अग्रवाल, वी०एस० – इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि, पृ० 242.

91 कुमार० – 7/3 – "सन्तान काकीर्ण महापथं तच्चीनांसुकैः कल्पित केतु मालय"

92 मयमतम, अध्याय–9, पंक्ति–72 – प्राकुप्रस्थग्यतमार्गा ऋतुदण्ड महापथारण्यास्ते।

93 मोतीचन्द्र सार्थवाह, पृ० 179.

94 चक्रवर्ती, हरिपद – ट्रेड ऐण्ड कामर्स ऑफ एंशियण्ट इण्डिया, पृ० 154.

95 कृष्णास्वामी – कांट्रीब्यूशन ऑफ साउथ इण्डिया टू इण्डियन कल्चर, पृ० 333.

सम्भवतः जो व्यापारी विदर्भ से विदिशा जाते थे, उन्हें विन्ध्य वन से विदर्भ तथा प्रतिष्ठान से श्रावस्ती दोनों मार्गों का उपयोग करना पड़ता था क्योंकि विन्ध्य वनों से दोनों का मार्ग अलग हो जाता था। इस प्रकार विदर्भ से विदिशा जाने वाला मार्ग विन्ध्य वनों से होकर गुजरता था।

2. महापथ –

कालिदास ने कुमारसम्भव नाटक के सप्तम् सर्ग में पार्वती के विवाह के प्रसंग में महापथ[96] को अलंकृत करने का उल्लेख किया है। कालिदास ने जिस महापथ का वर्णन किया है वह सम्भवतः पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाले उत्तरापथ मार्ग का स्मरण दिलाता है।[97]

शिल्प शास्त्रों में विभिन्न प्रकार के मार्गों की नामावली प्रस्तुत की गयी है। पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाले दण्ड की भाँति ऋजु मार्ग को मयमत में महापथ कहा गया है।

पाटलिपुत्र से एक लम्बी सड़क भारत के उत्तर–पश्चिम सीमान्त क्षेत्र से होते हुये अफगानिस्तान तक पहुँचती थी। इस सड़क के किनारे बड़े–बड़े नगर व मण्डियाँ थी। यह सड़क पाटलिपुत्र से काशी, मथुरा होती हुई सिन्धु नदी को पार करके उस मैदान से होती हुई हिन्दुकुश पर्वत से गमन करती हुई तक्षशिला पहुंचती थी।[98] यहां से यह सड़क हिड्डी नगर दार होती हुई वामियान पहुँचती थी। वामियान से एक सड़क बलव (बाह्लीक)

---

96 रघु० 4/69–70

97 वही, 4/62.

98 रघु०, – 5/73.

को जाती थी। वलय में वह मर्ध और तेवेन होते हुये कैस्पियन सागर के बन्दरगाहों तक जाती थी। इसी सड़क का एक भाग अंतियोक तक जाता था, जो रोमन साम्राज्य के व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था। वामियान से एक दूसरी सड़क सुग्ध होती हुई ताशकन्द तक जाती थी और यहाँ से पश्चिम की ओर आगे तुरफान तक गमन करती थी। बलव से एक दूसरी सड़क बदख्शा और पामीर होते हुये कारागर तक जाती थी और फिर आगे तारिम तक पहुँचती थी। यह मध्य एशिया का स्थल–मार्ग था। इसी पर कारगर, यारकन्द खोतान और नियानगर बसे थे। इन स्थानों पर गुप्तकाल में भारतीय उपनिवेश थे। गुप्तकाल में चीनी यात्री फाह्यान चीन से इसी थल मार्ग से खोतान आया था और बदौसा, स्वात, गान्धार, तक्षशिला तथा पुरुषपुर होते हुये मथुरा पहुँचा था। पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्र के इस स्थल मार्ग से उत्तर–पूर्व में तिब्बत, खोतान, चीन आदि देशों से और पश्चिम में ईरान, अरब तथा अन्य देशों से व्यापार होता था। पुष्कलावती होता हुआ व्यापारिक मार्ग मध्य एशिया और चीन जाता था।[99] रिज डेविड्स ने इस मार्ग पर चलने वाले 500 बैलगाड़ियों के कारवाँ का उल्लेख किया है।[100] कम्बोज देश से 'रघु' को घोड़ों का उपहार मिला था[101], जिससे लगता है कि भारत में उस देश से घोड़े सम्भवतः इसी मार्ग से आयात किये जाते थे। पश्चिम के पारसीक और यवन जैसे देशों से भी घोड़े भारत में पशुमण्डियों में विक्रय के लिये लाये जाते थे, इसलिये उन देशों को अश्व–साधन[102] कहा गया है।

---

99 अर्थशास्त्र – प्रयोज्यानामुत्तमाः कम्बोज सैन्हवार दृजवानायुजाः।

100 रघु० – 14/90.

101 वही, 14/30.

102 माल० – पृ० 33; रघु० 16/41.

रघुवंश में 'बनायु तरंगों'[103] का उल्लेख है। बनायु तरंगों के विषय में कथन है कि बनायु देश के घोड़े युद्ध के उपयोग के लिए उत्तम होते थे।[104] भारत में अरबी घोड़े सदा से ही प्रसिद्ध रहे हैं। युद्धादि प्रभृति अनेक प्रकार के प्रयोजनों के लिये ऐसे ही देश के घोड़े अच्छे माने जाते रहे हैं। पामीर की उपत्यका में स्थित कम्बोज देश के अश्वों की भी भारत जैसे देशों में अधिकाधिक मांग होती थी।

---

103 विनयपिटक, खण्ड–1, पृ० 212.

104 वही, खण्ड–1, पृ० 276–278.

3. राजपथ –

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के चौदहवें सर्ग में सीता को अयोध्या दिखाने के प्रसंग में राजमार्ग[105] का उल्लेख किया है। राम ने सीता को अयोध्या दिखाने के लिए राजमहल के छत पर ले जाकर कहा, देखो! राजमार्ग की दुकाने धन–धान्य (पर्ण्यवीथी)[106] से भरी हुई है, जिसमें समाज के उपयोग (विपणि)[107] की विविध वस्तुएँ बिका करती थीं।

यह सम्भवतः श्रावस्ती से कौशाम्बी जाने वाला राजमार्ग था। विनयपिटक के अनुसार कौशाम्बी से कोशल, राजगृह और वैशाली तक के लिये मार्ग बने थे।[108] उज्जयिनी से राजगृह जाते समय जीवक कोमार भक्त कौशाम्बी में रुके थे।[109] उत्तर से दक्षिण जाने वाला एक मार्ग कौशाम्बी, कोशल और मगध को जाता था।

एक राजपथ उत्तरी कोशल से गोदावरी के किनारे अस्तक के दक्षिण जनपद होता हुआ दक्षिण भारत को जाता था। यह मार्ग कौशाम्बी से होकर था। बाबरी नाम ब्राह्मण के सोलह शिष्य गोदावरी के अलक से श्रावस्ती गये थे जो पैठन, माहिष्मती, उज्जयिनी, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत से होकर गये थे।

---

105 कनिंघम – ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० 401.

106 डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, खण्ड–2, पृ० 1085.

107 अग्रवाल, आर०एस० – ट्रेड सेन्टर्स ऐण्ड रूट्स इन नार्दर्न इण्डिया, पृ० 60.

108 डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, खण्ड–2, पृ० 1126..

109 मलल सेकर – भाग–2, पृ० 1126.

उत्तरापथ पर एक नगर साकेत था जो कोशल की दूसरी राजधानी थी। कवि ने अयोध्या और साकेत को माना है।[110] यह नगर अमीर व्यापारियों की व्यापारिक गतिविधियों के कारण व्यस्त रहता था।

साकेत नगर श्रावस्ती से कौशाम्बी और पैठन जाने वाले व्यापारियों के ठहरने का और व्यापार करने का स्थान था।[111] श्रावस्ती से साकेत के लिये विभिन्न मार्ग प्रचलित थे।[112] श्रावस्ती साकेत से 60 योजन उत्तर, राजगृह से 45 योजन उत्तर–पश्चिम, शूर्पारक से 100 मील उत्तर–पूर्व तथा साकाश्य से 45 योजन दूरी थी।

4. विशेष मार्ग –

कालिदास ने महापथों एवं राजमार्गों के अतिरिक्त विभिन्न स्थलों पर नगरों के अनेक प्रकार के मार्गों का भी वर्णन किया है।

नगर जिन सड़कों पर रथ सुगमता से आ–जा सकते थे, वे सभी रथ्या कहलाती थी। नगरों में घुमने वाली अनेक सड़कें थीं जो मंगलवीथी कहलाती थी।[113] बाजारों में जो मार्ग जाता था आपण मार्ग[114] कहलाता था। इसके दोनों पार्श्वों पर समुन्नत एवं समृद्ध दुकानें विद्यमान होती थीं। आपण मार्ग जन संकुल होते थे। इससे यह ध्वनित होता है कि क्रय–विक्रय प्रचुर परिमाण में होता था, जो सुख और समृद्धि का प्रतीक है।

---

110 रघु० – 15/38. "वशी विवश चापोध्यांरथ्या संस्कार, शाभिनीम्।"

111 कुमार० – 7/55.

112 रघु० 4/26, 5/32, 72, 73, 6/10.

113 रघु०– 1/2.

114 वही, 16/68.

रथ, घोड़े, ऊँट एवं खच्चर तथा हाथी आदि स्थलीय परिवहन के प्रमुख साधन थे। व्यक्तियों द्वारा उठायी जाने वाली पालकी भी सवारी का एक साधन थी।[115]

(ख) जलीय मार्ग –

उपर्युक्त स्थल मार्गों के अतिरिक्त देश में जलमार्गों का भी गमनागमन एवं आयात–निर्यात में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनके द्वारा अन्तर्देशीय एवं विदेशी आवागमन और व्यापार होता था।

नदियों में छोटी–छोटी नावें[116] एवं बड़ी–बड़ी नावें चलती थीं।[117] जिनमें एक का आकार चन्दोवा[118] (विमान) जैसा था। सरयू नदी में नाव के द्वारा लोग आया–जाया करते थे।[119] वंग देश के निवासियों के पास युद्धपोत थे।[120] वास्तव में यह देश के भीतरी जलमार्ग में इनके चलने के संकेत हैं, जिनसे व्यापारी माल लाया और ले जाया करते थे। व्यापारियों के कारवाँ पहाड़ी मार्गों में इस प्रकार चलते हैं जैसे कि भवन हों, नदियों पर ऐसे विहरते हैं मानो कि वे कूप हों और वनों में ऐसे जाते हैं कि वे वन न होकर उपवन हों।[121] जलमार्ग अधिक सुविधाजनक एवं कम खर्चीले होते थे। गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी प्रभृति बड़ी नादियों के जलमार्ग से व्यापार होता था। नदियों के ये जलमार्ग समुद्र तट पर बसे बन्दरगाहों से जुड़े हुये थे। पश्चिमी समुद्र तट पर के प्रमुख बन्दरगाह भृकुकच्छ

---

115 वही, 14/30.

116 वही, 4/36.

117 मैककिण्डल – ऐंशेंट इण्डिया, पृ० 110.

118 अभि० छठां सर्ग, 23वाँ श्लोक – "समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रोनाम नौ व्यसने विपन्न।"

119 पाण्डेय, जयनारायण – पूरातत्व विमर्श, पृ० 420, इलाहाबाद।

120 रघु० 6/57

121 रघु० 4/69–70.

(भड़ौच), सूर्पारक (सोपारा) और कल्याण (कल्यान) थे। पश्चिमी तट पर मालाबार में भी बन्दरगाह थे। भारत के पश्चिमी मालाबार के किनारे से मिश्र तथा पश्चिमी एशिया के देशों से विदेशी व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था।[122] पारस जाने का एक जलपथ था, जिससे पोत आया–जाया करते थे, जिससे यात्रा करना रघु ने पसंद नहीं किया। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में एक स्थान पर वर्णित है कि एक प्रतिष्ठित सार्थवाह धनमित्र अपने माल भरे पोत के साथ मध्य सागर में समा गया था।[123] मैककिण्डल का कथन है कि चतुर भारतीय नाविक यूनानियों को अरब सागर में होते हुए मालाबार तट ले जाते थे। रोमन साम्राज्य और पश्चिमी देशों में व्यापार इन्हीं बन्दरगाहों द्वारा होता था।

बंगाल में समुद्र तट पर ताम्रलिप्त नामक अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध बन्दरगाह था जिससे चीन, लंका, जावा, सुमात्रा तथा अन्य पूर्वी देशों और द्वीपों से[124] पर्याप्त व्यापार होता था। चीन ने चीनांशुक नामक रेशमी वस्त्र का भारत में आयात किया जाता था।[125] भारत की पूर्वी सीमा पर व्यापार का यह सबसे बड़ा और प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था। ताम्रलिप्ति बन्दरगाह से पूर्वी देशों से आया व्यापारिक माल, व्यापारियों के कारवाओं द्वारा पाटलिपुत्र, बोधगया, अयोध्या, वैशाली, कौशाम्बी आदि प्रमुख नगरों को आता था। चीनी यात्री इत्सिंग के ताम्रलिप्ति बन्दरगाह से स्थल मार्ग द्वारा व्यापारियों के कारवां के साथ बोधगया जाने का उल्लेख मिलता है।[126] ताम्रलिप्ति से दक्षिण की ओर उड़ीसा के सागर तट पर स्थित चरित्र और गंजाम जिले में कांकोद बन्दरगाह के होने के प्रमाण प्राप्त हैं।[127]

---

122 मैकक्रिण्डल – नोट्स फ्रॉम एंशियंन इण्डिया, पृ० 160.

123 फाह्यान रेकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्टक किंगडम, जेम्स लेग्गे का अनुवाद, पृ० 4–113

124 रघु० 8/15, 19/8; कुमारसं० – 5/34, 1/1.

125 रघु० 4/28.

126 रघु० 4/36.

127 वही, 4/39

इसकी सम्पन्नता साहित्यकारों की दृष्टि में अत्यन्त साधनीय थी। दक्षिण भारत में आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा और गोदावरी नदियों के मुहानों पर अनेक बन्दरगाह होने के प्रमाण मिलते हैं। जिनमें टालमी की दृष्टि में मटुरा और घटशाला अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। चोल प्रदेश के बन्दगाहों में कावेरी पट्टम (आधुनिक पुहार) और टोंडई, पांड्य प्रदेश में वोरकई ओर तलीपुर बन्दरगाह तथा मालाबार समुद्र तट पर कोट्टायम और मुजरिस की महत्ता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सांस्कृतिक एवं व्यापारिक दृष्टि से (वर्तमान क्रेंगनोर) अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। लंका जलमार्गों के लिये बहुत महत्वपूर्ण स्थल था, क्योंकि पूर्व और पश्चिम को जाने वाली समस्त जलमार्ग लंका से होकर जाना उसकी भौगोलिक स्थिति की अपरिहार्यता थी। चीनी यात्री फाह्यान जलपोत द्वारा दक्षिण भारत, लंका, जावा प्रभृति प्रमुख बौद्ध केन्द्रों से होता हुआ चीन गया था। कारमास का कथन है कि इस युग में सिंहल द्वीप समुद्री व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। वहां ईरान और अरब देशों के जलपोत आते–जाते थे और वहीं से विदेशों को भी जहाज आते–जाते थे। सिंहल द्वीप के व्यापारी वहाँ आये माल को भारत के मालाबार और कल्याण के बन्दरगाहों को भेजते थे।[128]

इस तरह भारत के पूर्वी तट से चीन, दक्षिणी तट से श्रीलंका, पश्चिमी तट से अरब, यूनान आदि पश्चिमी देशों के साथ सामुद्रिक आवागमन थे।

2. यौद्धिक या राज अभियान सम्बन्धी मार्ग –

1. रघु दिग्विजय मार्ग
2. राम वन गमन मार्ग

---

128 रघु०, 4/35.

3. राम–लक्ष्मण का जनकपुर मार्ग

4. कण्वाश्रम से सोमतीर्थ मार्ग

5. कुश का कुशावती से अयोध्या का अभियान मार्ग

6. शत्रुघ्न का अयोध्या से मथुरा तक का अभियान मार्ग

7. इन्दुमती के स्वयंवर में भाग लेने वाले अज का मार्ग

8. सुदर्शन का नैमिषारण्य जाने का मार्ग

1. रघु का दिग्विजय मार्ग –

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में रघु दिग्विजय का अयोध्या से होकर सुह्य, वंग, पाण्ड्य, नासिक, ईरान, कम्बोज, प्राग्ज्योतिष आदि स्थलों की यात्रा करते हुये पुनः अयोध्या पहुंचने का लुभावन चित्रण किया है। छः प्रकार की स्थल सेना लेकर रघु अयोध्या से पूर्वाभिमुख[129] प्रस्थान कर गंगा के ऊपरी भाग से होते हुए समुद्र तटीय प्रदेश सुह्य पहुँचे।[130] यह बंगाल का वह भाग है जो गंगा के पश्चिम में पड़ता है। सुह्य के बाद क्रमशः वंग (बंगाल) बंगाल की खाड़ी के द्वीपों में अपना जयस्तम्भ गाड़ दिया।[131] उसके बाद कपिशा नदी को पार कर उत्कल देश[132] (कलिंग का उत्तरी भाग) के राजाओं से मार्ग दिखाये हुए कलिंग (महेन्द्र पर्वत की चोटी पर स्थित) देश के शासक महेन्द्रगिरि को पराजित किया।[133] नारियल का रसपान करने के पश्चात् समुद्र तटीय भाग

---

129 रघु० 4/38.

130 वही, 4/49.

131 रघु० 4/59.

132 वही, 4/68.

133 वही, 4/81.

से होते हुए दक्षिण की ओर कावेरी नदी को पाकर मलयगिरि की तराई से आगे बढ़ते हुए ताम्रपर्णी नदी एवं समुद्र के संगम पर वर्तमान पाण्ड्य वंश (उरगपुर) के राजा को युद्ध में पराजित किया।[134] पाण्ड्य नरेश से मोतियों को हार लेकर पालघाट के दर्रे से होकर पश्चिमी समुद्र तटीय भाग उपरान्त में प्रवेश कर केरल[135] (मालावर) में विजय श्री प्राप्त कर तटीय भाग से होते हुए त्रिकूट पर्वत[136] (नासिक के पास) पर विजय स्तम्भ स्थापित कर स्थल मार्ग से ही होते हुये पारसीक[137] (ईरान) और वहां से उत्तर की ओर चलकर वक्षु की घाटी (बलख–बुखारा) में हूणों को पराजित कर[138] कम्बोज[139] (तजाकिस्तान के पास–पास) पहुँचते हैं, वहाँ से पूर्व की ओर अग्रसर हो और हिमवान को पार कर रघु पूर्वाभिमुख प्रणय करते ब्रह्मपुत्र की तराई में पहुँचते हैं और वहां से हिमालय के उपत्यका का निवासी किरात, तिब्बती या लद्दाख, जस्कर ओर रूपधु के तिब्बती–वर्मा, किन्नरों[140] कैलाश तथा मानस के पश्चिम प्राग्ज्योतिष[141] (गोहारी, कामरूप की राजधानी) में प्रवेश करते हैं। यहीं पर रघु की दिग्विजय का अवसान होता है। प्राग्ज्योतिष से रघु अयोध्या लौट आते हैं।[142] कालिदास ने रघु की दिग्विजय समुद्रगुप्त के दिग्विजय के आधार पर चित्रित की है।[143]

---

134 रघु० (जयशंकर मिश्रा, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 559.)

135 प्रयाग–प्रशस्ति।

136 रघु० 4/76.

137 वही, 4/69.

138 वही, 4/85.

139 मोतीचन्द, पृ० 23.

140 रघु० 4/63.

141 वही, 4/78.

142 रघुवंशम् द्वादश सर्ग।

143 रघु० 12/15.

समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय स्थल मार्ग को अपनाकर अहिच्छत्रा और बुन्देलखण्ड से प्रारम्भ करके कोशल, महाकान्तार, कौशल (आधुनिक गंजाम), पिष्टपुर (गोदावरी के निकट का प्रदेश), कोट्टूर, (विशाखापतनम् के निकट) एरण्डपल्ल (उड़ीसा का समुद्रतटीय भाग), काँची (आधुनिक कांजीवरम्) अवमुक्त (गोदावरी के तट पर स्थित), वेंगि (कृष्णा और गोदावरी का भूभाग), पालक्क (कृष्णा नदी के दक्षिण में स्थित), देवराष्ट्र (विशाखापत्तनम्) और कुस्थलपुर (उत्तरी अर्काट) तक किया था।[144] इस अभिलेखीय विवरण से यह स्पष्ट है कि उस समय उत्तर से दक्षिण तक ऐसा मार्ग अवश्य रहा होगा, जिससे एक विशाल सेना जा सकी होगी। सम्भवतः रघु की दिग्विजय अयोध्या से पश्चिमी समुद्र तट तक विन्ध्य पर्वत मालाओं के आस–पास हुई होगी। मोतीचन्द्र ने अपने ग्रन्थ सार्थवाह में स्पष्ट किया है कि विन्ध्य पर्वत अपने उन पथों के लिये प्रसिद्ध है जो उत्तर भारत को पश्चिमी किनारे के बन्दरगाहों और दक्षिण के प्रसिद्ध नगरों से जोड़ते हैं।[145]

2. राम वन गमन मार्ग –

रघुवंश महाकाव्य के द्वादश सर्ग में कालिदास ने अयोध्या से लंका तक के मार्ग में होने वाली घटनाओं का चित्ताकर्षक वर्णन किया है।[146]

राम अपनी वनवास यात्रा के समय अयोध्या से श्रृंगवेरपुर, वहाँ से प्रयोग होते हुये विन्ध्य पर्वत को पार कर उत्तर से दक्षिण भारत गये। वे चित्रकूट[147] से दण्डतक वन

---

144 रघु० 12/31.

145 रघु० 12/71

146 वही, 13/61

147 रघु०, 5/2.

पार कर अत्रि आश्रम पहुँचे। वहाँ से नर्मदा को पार कर जंगल होते हुये गोदावरी के तट पर पंचवटी पहुँचे। पंचवटी से रामेश्वरम् होते हुए लंका[148] पहुँचे थे।

पुनः विमान (पुष्पक) द्वारा लंका के पंचवटी (नासिक) और पंचवटी से उत्तर पूर्व चित्रकूट, चित्रकूट से प्रयाग, प्रयाग से अयोध्या वापस लौटे थे।[149] कतिपय विशिष्ट रथों द्वारा भी लोग आकाश की यात्रा करते थे।[150]

बौद्ध स्रोतों से ज्ञात होता है कि उत्तर से दक्षिण को (श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक) एक महत्वपूर्ण मार्ग था।[151] बाबरी नामक ब्राह्मण के सोलह शिष्य गोदावरी के अलक से (गोदावरी के पास प्रतिष्ठान) साकेत होकर श्रावस्ती गये थे।[152] चीन यात्री यहाँ आये थे।

राम का वन मार्ग सम्भवतः वर्तमान समय में लंका से नासिक तक वायु मार्ग और नासिक से इलाहाबाद तक जाने वाले रेलमार्ग से साम्य रखता है।

आधुनिक श्रृंगवेरपुर को प्रतापगढ़–सुल्तानपुर होकर फैजाबार जाने वाला सड़क मार्ग अयोध्या नगरी को पहुँचता है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्रस्तुत पथ को राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक माना है।[153]

3. राम–लक्ष्मण का जनकपुर मार्ग –

---

148 प्रो० रीज डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता 1950 पृ० 163 एवं आगे।

149 सुत्त निपात 10/10, 13.

150 अग्रवाल, वी०एस०; भारत की मौलिक एकता, इलाहाबाद 2011, पृ० 30, 11.

151 रघु० 11वाँ सर्ग

152 वही, 11/5.

153 रघु०, 11/14.

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग में राम–लक्ष्मण को अयोध्या से विश्वामित्र आश्रम तथा वहाँ से जनकपुर जाने का वर्णन किया है।[154]

विश्वामित्र, राम–लक्ष्मण को अयोध्या[155] से लेकर ताड़का वन[156] (बलिया) से होते हुये सिद्धाश्रम[157] (बक्सर चरित्रवन) पुनः बक्सर से जनकपुर गये थे[158] यह मार्ग सम्भवतः अयोध्या से बलिया, बलिया से दक्षिण–पूर्व बक्सर, बक्सर से उत्तर–पूर्व छपरा, मुजफ्फरपुर एवं अहियारी (गौतम आश्रम) होते हुये जनकपुर जाता था।

मोतीचन्द्र ने एक मार्ग का उल्लेख किया है जो हस्तिनापुर से साकेत, श्रावस्ती, कपिलवस्तु और दक्षिण–पूर्व की ओर पावा, कुशीनारा और वैशाली से होकर जाता था।[159] कुरूक्षेत्र को राजगिरि के इस मार्ग का उल्लेख महाभारत में भी आया है।[160]

4. कण्वाश्रम से सोमतीर्थ का मार्ग –

अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के प्रथम अंक में कालिदास ने कण्व को सोमतीर्थ की यात्रा पर बताया है।

---

154 वही, 11/22–23.

155 रघु० 11/36.

156 मोतीचन्द; सार्थवाह, पृ० 19.

157 महा०; सभापर्व 18/26.

158 शाकु०; 1/13.

159 रघु० 16/25.

160 मोतीचन्द, वही, पृ० 24.

कण्वाश्रम (बिजनौर) से सोमतीर्थ (सोमनाथ तक का मार्ग)[161] जो पुष्कर से होकर जाता था। समुद्र तटीय पोरबन्दर से उदयपुर आदि से होते हुये मुरादाबाद जाने वाली सड़क से साम्य रखता है।

5. कुश का कुशावती से अयोध्या का अभिज्ञान मार्ग –

रघुवंश के सोलहवें सर्ग में कुश द्वारा कुशावती को ब्राह्मणों के लिये छोड़कर अयोध्या जाने का वर्णन है। कुशावती (नागपुर) के आस–पास कुश की राजधानी से अयोध्या जाने वाले मार्ग का वर्णन है।[162] विदर्भ की राजधानी से अयोध्या जाने वाले मार्ग से सम्बद्ध है। यह सम्भवतः नागपुर से जबलपुर, वहाँ से प्रयाग होते हुये अयोध्या जाने वाले मार्ग से साम्य रखता है।[163]

6. शत्रुघ्न का अयोध्या से मथुरा तक अभियान मार्ग –

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में शत्रुघ्न के अभिज्ञान मार्ग का वर्णन किया है, जिसमें शत्रुघ्न लवणासुर को मारने के लिये अयोध्या से निकलते हैं और मथुरा नाम की नगरी बसाकर अपना अभिज्ञान समाप्त करते हैं।

शत्रुघ्न अयोध्या से बाल्मीकि आश्रम (बिठूर–कानपुर) से मधुवन नगर होते हुये यमुना के तट पर मथुरा तक आते हैं।[164] यह मार्ग सम्भवतः अयोध्या से कानपुर होते हुये मथुरा को जाता है।

---

161 रघु०; पञ्चम सर्ग।

162 रघु० 15/8–9, 11, 12, 15, 28.

163 रघु०, 5/47.

164 वही, 5/56.

7. इन्दुमती स्वयंवर में अज का मार्ग –

रघुवंश महाकाव्य के पंचम अंक में अज के अयोध्या से इन्दुमती स्वयंवर में भाग लेने के लिये विदर्भ तक का लुभावना वर्णन कालिदास ने किया।[165]

इन्दुमती स्वयंवर में अज, अयोध्या से चलकर नर्मदा नदी के तट पर[166] पड़ाव डालने के बाद, मतवाले हाथी को वाणों से मारकर शाप मुक्त किया, जो गन्धर्वराज प्रियदर्शन का पुत्र प्रियंवद था, मतंग मुनि के शाप से हाथी हो गया था।[167] तदोपरान्त विदर्भ (कुण्डनपुर) पहुँचे थे।[168]

यह मार्ग अयोध्या से प्रयाग तथा प्रयाग से जबलपुर होते हुये नागपुर जाने वाले मार्ग से सम्बद्ध हैं।[169]

8. सुदर्शन का नैमिषारण्य का मार्ग –

रघुवंश महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग में विद्वान् राजा सुदर्शन के अपने पुत्र अग्निवर्ण को राजा बनाकर नैमिषारण्य जाने का वर्णन कालिदास ने किया है।

सम्भवतः अयोध्या से राम सनेही घाट, बाराबंकी, लखनऊ होते हुये सीतापुर से नैमिषारण्य (सीतापुर से 20 मील दूर नीमसर स्थान) के अद्यतन मार्ग से साम्य रखता है।

---

165 वही, 5/60.

166 मोतीचन्द; वही, पृ० 24.

167 रघु० 19/1.

168 मेघ० पूर्व मेघ 1/1.

169 डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने (मेघदूत– एक पुरानी कहानी) इसे सरगुजा रियासत में स्थित कोई छोटी पहाड़ी माना है।

3. व्योम मार्ग (स्थल के आधार पर) –

मेघ मार्ग –

मेघदूत के पूर्व मेघ में कालिदास ने रामगिरि को अलकापुरी तक के मार्ग में पड़ने वाले प्रसिद्ध स्थानों, नदियों, पर्वतों तथा तीर्थ स्थानों का ऐसा लुभावना चित्रण किया है, जिसे सुनकर यक्ष का सन्देश ले जाने वाला मेघ ही नहीं, वरन् पाठक भी तुरन्त प्रस्थान कर देने को उद्यत हो जायें।

अनेक विद्वानों ने कालिदास ने भौगोलिक ज्ञान की प्रशंसा की है और उन्होंने कालिदास को इस बात का श्रेय दिया है कि मेघदूत में कालिदास ने मेघ का जो मार्ग बतलाया है, वास्तव में वहीं मानूसनी हवाओं का मार्ग होता है। यक्ष रामगिरि के आश्रमों में वास कर रहा था और वहीं से उसने मेघ से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने की याचना की।[170] रामगिरि नागपुर से उत्तर में कुछ दूरी पर स्थित कोई पहाड़ी थी, जिसे रामटेक कहा जाता है।[171]

रामगिरि से उत्तर की ओर चलते हुये सबसे पहला प्रदेश माल[172] (मल्लिनाथ, जिसे पर्वत के समान ऊँचा स्थल मानते हैं जबकि कुछ लोग मध्य प्रदेश में मालदा को माल मानते हैं) का पठार पड़ता है। उससे उत्तर–पश्चिम की ओर चलते हुये अगला स्थान आम्रकूट[173] (अमरकण्टक पर्वत, नम्रदा नदी का उद्‌गम स्थल) नाम का पर्वत आता है। उससे आगे विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी, बाद में नर्मदा (रेवा) नदी बलखाती हुई मिलती

---

170 मेघ० (पूर्व मेघ), 1/16.

171 वही, 1/17.

172 वही, 1/19.

173 मेघ० (पूर्वमेघ) 1/24

है।[174] उसके बाद छोटे–छोटे अनेक पर्वतों को पार करके दशार्ण[175] (मालवा का पूर्व भाग, जिसकी राजधानी विदिशा है) नाम का जनपद आ जाता है, जिसकी विदिशा[176] (आधुनिक भीलसा या बीसनगर) राजधानी बड़ी प्रसिद्ध थी और जो वेत्रवती (वेतवा) के किनारे स्थित थी। विदिशा के समीप नीचे[177] (एक पर्वत) नामक गिरि को पार करके मेघ को पश्चिम की ओर मुड़कर अवन्ति[178] (मालवा का पश्चिम भाग जाने के लिये कहा गया है, यद्यपि वैसा करने पर उसका रास्ता टेढ़ा हो जायेगा। विदिशा[179] से उज्जयिनी[180] (विशाला, आधुनिक उज्जैन) पहुँचने में रास्ते में निर्विन्ध्या और शिप्रा[181] नदियाँ (मालवा देश में बहने वाली नदी, शिप्रा की सहायक है) है। वहां महाकाल का मन्दिर भी द्रष्टव्य स्थान था, जो गन्धवती नदी के किनारे स्थित था।

उज्जयिनी से आगे बढ़कर गम्भीरा[182] (शिप्रा की कोई सहायक नदी) पड़ती है और देवगिरि (आधुनिक देवगढ़, डॉ. फ्लीट इसे झाँसी के पास मानते हैं) आ जाता है। देवगिरि में स्कन्द का प्रसिद्ध पुण्य–धाम था। इसके पश्चात् कुछ रास्ता पार करने के बाद चर्मण्वती (आधुनिक चम्बल, मालवा में बहने वाली नदी, यमुना की सहायक) नदी आ जाती है। चम्बल नदी को पार करके दशपुर (आधुनिक मन्दसौर या दसौर) नगर आ जाता है।

---

174 वही, 1/26.

175 वही, 1/31.

176 वही, 1/25.

177 वही, 1/28.

178 रघु० 1/44.

179 वही, 1/43.

180 वही, 1/45.

181 वही, 1/49.

182 मेघ० (पूर्व मेघ), 1/50.

विल्सन ने इसे उज्जैन और थानेश्वर की सीध में स्थित आधुनिक रन्तिपुर माना है।[183] आप्टे इसे आधुनिक धौरापुर मानते हैं। इसके बाद ब्रह्मवर्त जनपद (सरस्वती और द्रवद्वती के बीच का प्रदेश, देहली का पूर्वोत्तर प्रदेश, आधुनिक कुरूक्षेत्र) आ जाता है, जिसमें कुरूक्षेत्र का प्रसिद्ध प्रदेश है, जहां महाभारत में प्रसिद्ध कौरव–पाण्डवों का युद्ध हुआ था और जिसमें परम पाठन नदी सरस्वती बहती थी। कुरूक्षेत्र के मैदान को पार करके कनखल (हरिद्वार के पास एक तीर्थ स्थान) नामक स्थान आ जाता है, जहां गंगा नदी हिमालय से उत्तर तक मैदान (समतल भूमि) में आ जाती है। उसके आगे गंगा का उद्‌गम स्थान हिमालय पर्वत आ जाता है। हिमालय में एक शिला में प्रकट शम्भु के चरणन्यास है। भक्त लोग श्रद्धा के साथ जिनकी परिक्रमा किया करते हैं। हिमालय के तट के समीप अन्य दर्शनीय स्थलों को देखते हुये आगे बढ़ने का क्रौन्चरध्र (पुराणों में प्रसिद्ध एक पर्वत, इसका कार्तिकेय ने भंजन किया था, नीतिदर्श) आ जाता है और उसमें से होकर उत्तर की ओर बढ़ने पर कैलाश पर्वत (हिमालय में स्थित) आ जाता है, जिसकी गोद में अलकापुरी विद्यमान है।

कालिदास ने इस प्रकार मेघ–मार्ग मध्य को भारत से लेकर हिमालय के हिमाच्छादित धवल शिखरों तक, मार्ग में पड़ने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य और ऐतिहासिक तथा धार्मिक महत्व के सभी प्रमुख स्थानों का कवित्वमय वर्णन दे दिया है।

इस प्रकार कालिदास स्थूल रूप से भारत भूमि का सीमांकन कर उसके आन्तरिक मार्गों का वर्णन प्रारम्भ कर सम्पूर्ण देश को एक तन्तु के प्रति अतुल आस्था एवं अविच्छिन्न राष्ट्रीय अखण्डता एकता को अभिव्यंजित किया है। अतएव कालिदास का

---

183 विष्णु पुराण, ट्रांसलेटेड बाई विल्सन वाल्यूम 5, पेज 69–71.

कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है और आज परिस्थितियों में भी उनकी अमर कृतियों में राष्ट्रीय अनुराग से आप्लावित उनका अमर सन्देश प्रासंगिक व उपादेय है।